विषय-प्रवेश

संस्कृत व्याकरण की परम्परा

संस्कृत व्याकरण की परम्परा अत्यन्त सुदीर्घ है। वैदिक काल में ही संस्कृत व्याकरण एक स्वतंत्र वेदाङ्ग के रूप में स्थापित हो चुका था। वेदों की रचना और भाषा सौष्ठव के आधार पर यह कहना सर्वथा युक्तिसंगत है कि वेदमन्त्रों के रचनाकाल में अवश्य ही व्याकरण का अध्ययन प्रारम्भ हो चुका था। ब्राह्मणग्रन्थों में स्पष्ट ही व्याकरण सम्बन्धी अनेक श्शब्दों का उल्लेख हुआ है। प्रातिशाख्य ग्रन्थ भी व्याकरण सम्बन्धी अध्ययन की ही देन है। अनेक सूत्र जो पाणिनि के व्याकरण में आज उपलब्ध हैं ज्यों कि त्यों प्रातिशाख्यों में उपलब्ध हैं। प्रातिशाख्यों के कुछ सूत्र पाणिनि के व्याकरण में कुछ परिवर्तन के साथ मिलते हैं।

यास्क के निरुक्त में भी अनेक वैयाकरणों के नामों का उल्लेख है। अनेक स्थलों पर वैयाकरणों के मत को उद्घ त किया गया है जिससे स्पष्ट है कि यास्क के काल से पहले ही व्याकरणशास्त्र का प्रारम्भ हो चुका था।

पाणिनि से पूर्ववर्ती वैयाकरण

पाणिनि से पूर्ववर्ती वैयाकरणों में प्रारम्भिक नाम देवताओं के हैं। ऋक्तन्त्र के अनुसर व्याकरणशास्त्र का प्रथम प्रवक्ता ब्रह्मणा था। ब्रह्मा ने ब हस्पति को व्याकरण का ज्ञान दिया। ब हस्पति ने इन्द्र को तथा इन्द्र ने भारद्वाज को व्याकरण शास्त्र का उपदेश किया। भारद्वाज ने अन्य ऋषियों को और ऋषियों ने अन्य ब्राह्मणों को व्याकरण का ज्ञान दिया। महाभाष्यकार पत जलि ने भी उल्लेख किया है कि ब हस्पति ने इन्द्र को एक एक पद का उपदेश करके श्शब्दपारायण नामक ग्रन्थ को पढ़ाया था परन्तु वह उसे पूरा नहीं पढ़ा सका था। इन्द्र के विषय में भी तैत्तिरीय संहिता में उल्लेख आता है कि उसने श्शब्दों को प थक्-प थक खण्डों में विभाजित करके देवताओं को समझाया था-

> **वाग्वै पराच्यव्याकृतावदत्, ते देवा इन्द्रमब्रुवन्-इमां नो वाचं व्याकुर्विति। सो ब्रवीत्-वरं व णै मह्यं चैवैष वायवे च सह ग ह्यातां इति तस्मादैन्द्रवायवः सह ग ह्याते। तामिन्द्रो मध्यतो वक्रम्य व्याकरोत्। तस्मादियं व्याकृता वागुच्यते। (तै. सं. 6.4.7.3)।**
>
> पं. युधिष्ठिर मीमांसक ने अपने 'संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास' नामक ग्रंथ में ऐन्द्र व्याकरण के निम्नलिखित तीन सूत्रों का संकलन किया है-

1. अथ वर्णसमूहः
2. अर्थः पदम्
3. अन्त्यवर्ण समुद्भूता धातवः परिकीर्तिताः।

इन्द्र का व्याकरण बहुत बड़ा था इसकी सूचना हमें महाभारत के टीकाकार देवबोध के इस श्लोक से मिलती है-

> **यान्युज्जहार माहेन्द्रात् व्यासो व्याकरणार्णवात्।**
> **पदरत्नानि किं तानि सन्ति पाणिनिगोष्पदे।।**

अर्थात् व्यासमुनि ने जिन पदों का प्रयोग किया है वे ऐन्द्र व्याकरण में हैं। वे पाणिनि के व्याकरण में नहीं है। इसमें ऐन्द्र व्याकरण को समुद्र कहा है तो उसकी तुलना में पाणिनि व्याकरण को एक गाय के खुर के समान छोटा बताया है। देवबोध की यह अत्युक्ति हो सकती है परन्तु इससे एक बात तो स्पष्ट है कि पाणिनि से पूर्व ऐन्द्र व्याकरण था जो विशालकाय था।

दिव्य वैयाकरणों में महेश्वर का नाम भी आता है। महेश्वर शिव का ही नाम है। महेश्वर द्वारा व्याकरण निर्माण का संकेत महाभारत में शान्तिवर्ष के 'शिवसहस्रनाम' स्तोत्र में मिलता है। पाणिनीय शिक्षा में महेश्वर का वैयाकरण के रूप में स्पष्ट उल्लेख मिलता है। पाणिनि को नमस्कार करते समय ग्रन्थकार ने सूचना दी है कि पाणिनि ने अक्षरसमाम्नाय (प्रत्याहार सूत्रों) को महेश्वर से प्राप्त किया-

येनाक्षरसमाम्नायमधिगम्य महेश्वरात्।

कृत्स्नं व्याकरणं प्रोक्तं तस्मै पाणिनये नमः।।

अर्थात् जिस पाणिनि ने महेश्वर से अक्षरसमाम्नाय को ग्रहण करके सम्पूर्ण व्याकरण शास्त्र लिखा उस पाणिनि को नमस्कार है। नन्दिकेशरकृत काशिका नामक ग्रन्थ में भी इसी बात को कहा गया है-

न त्तावसाने नटराजराजो ननाद ढक्कां नवप चवारम्।

उद्धर्तुकामः सनकादिसिद्धानेतद् विमर्शे शिवसूत्रजालम्।।

इस श्लोक के अनुसार सनकादि मुनियों के उद्धार के लिए नटराज शिव ने 14 बार डमरू बजाया जिससे ये 14 माहेश्वर सूत्र निकले। पाणिनि के 14 प्रत्याहार सूत्र माहेश्वर सूत्र नाम से भी प्रसिद्ध हैं।

ब्रह्मा, ब हस्पति, इन्द्र तथा महेश्वर से अतिरिक्त वायु, भारद्वाज, चन्द्र (ये वर्तमान चन्द्रगोमी से भिन्न हैं), यम, रुद्र, वरुण, सोम तथा विष्णु द्वारा भी व्याकरण शास्त्र के प्रणयन का संकेत मिलता है।

आज के वैज्ञानिक युग के लोगों के लिए यह विश्वसनीय नहीं है कि उपर्युक्त देवलोकवासी आचार्यों द्वारा व्याकरणशास्त्र- ऐहलौकिक व्याकरण शास्त्र- का प्रणयन किया गया था। किन्तु प्राचीन ग्रंथों के प्रमाण तो उक्त आचार्यों की पारलौकिकता का ही समर्थन करते हैं। ऐसी विषम परिस्थिति में जब उक्त आचार्यों के व्यक्तित्व का भी निर्धारण कठिन है तो फिर उनके काल आदि का निर्णय करना कैसे सम्भव हो सकेगा? इस सन्देह के समर्थन में पाणिनि जैसे सर्वतोभद्र वैयाकरण का ब्रह्मा, ब हस्पति आदि के विषय में मौनावलम्बन का भी योगदान उपेक्षणीय नहीं है। इतना होने पर भी इन्द्र के ऐतिहासिकत्व का खण्डन नहीं किया जा सकता।

जो आचार्य निस्सन्दिग्ध रूप में ऐतिहासिक हैं उन्हें हम प्रथमतः दो वर्गों में विभक्त कर सकते हैं:-

1. पाणिनि से पूर्ववर्ती,
2. पाणिनि से उत्तरवर्त्ती

प्रथम वर्ग के आचार्यों को भी पाणिनि के संकेत के आधार पर दो उपवर्गों में बाँटा जा सकता है-

1. पाणिनि द्वारा अनुल्लिखित,
2. पाणिनि द्वारा उल्लिखित।

प्रथम वर्ग के प्रथम उपवर्ग में निम्नलिखित आचार्यों का समावेश है:

(1) इन्द्र, (2) भागुरि, (3) पौष्करसादि, (4) चारायण, (5) काशकृत्स्न, (6) वैयाघ्रपद, (7) माध्यन्दिनि, (8) रौढि, (9) शौनक, (10) गौतम तथा, (11) व्याडि।

इस वर्ग के द्वितीय उपवर्ग में निम्न-निर्दिष्ट आचार्यों की गणना है-

(1) आपिशलि, (2) काश्यप, (3) गार्ग्य, (4) गालव, (5) चाक्रवर्मण, (6) भारद्वाज, (7) शाकटायन, (8) शाकल्य, (9) सेनक तथा (10) स्फोटायन।

इन सब वैयाकरणों का तथा द्वितीय वर्ग के वैयाकरणों का विशद् विवरण पं. युधिष्ठिर मीमांसक जी के 'संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास' भाग-1, के त तीय, चतुर्थ तथा सप्तदश अध्यायों से प्राप्त करना चाहिए।

'अष्टाध्यायी' में कुछ सर्वनामों- उदीचाम्, आचार्याणाम्, एकेषाम्, प्राचाम्- का भी प्रयोग मिलता है। किन्तु यह निर्णय करना कठिन है कि पाणिनि ने इन सर्वनाम श्शब्दों द्वारा उन्हीं उल्लिखित आचार्यों के मत को रखा है या अन्य आचार्यों के मत को।

महर्षि पाणिनि

(क) **पाणिनि के नामः** 'अष्टाध्यायी' के निर्माता महर्षि पाणिनि के निम्नलिखित नाम उपलब्ध होते हैं- (1) पाणिन, (2) पाणिनि, (3) दाक्षीपुत्र, (4) शालङ्कि, (5) शालातुरीय अथवा सालातुरीय तथा (6) आहिक। इनसे अतिरिक्त पं. शिवदत्त शर्मा जी

द्वारा 'महाभाष्य; के प्रथम भाग की प्रस्तावना में उद्घ त केशवीय 'नानार्थार्णवपसंक्षेप के वाक्य से मातुरीय (?) तथा दाक्षेय नाम भी पाणिनि के प्रतीत होते हैं। 'पाणिनीय शिक्षा' के याजुष पाठ में पाणिनेय तथा सोमेश्वर तथा सोमेश्वर के 'यशस्तिलकचम्पू' में पणिपुत्र श्शब्द का भी प्रयोग मिलता है।

(ख) **पाणिनि का वंशः** पाणिनि के वंश के विषय में बहुत वाद-विवाद चिरकाल से प्रचलित हैं। किन्तु उपर्युक्त प्रमाण के आधार पर निम्नलिखित वंशावली का संकेत मिलता है।

यह वंशावली म. म. शिवदत्त, शर्मा जी की है। परन्तु मीमांसक जी निम्नलिखित वंशावली के पक्ष में हैं-

मीमासक जी की द ष्टि में दाक्षि तथा दाक्षायण एक ही अर्थ के प्रतिपादक हैं।
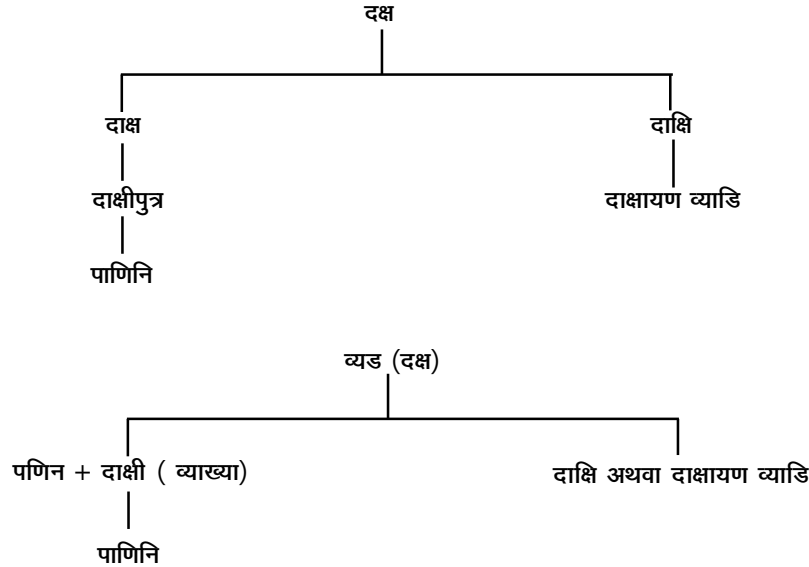
उपर्युक्त वंशावली तो मात पक्ष की है। आचार्य पाणिनि के पिता के विषय में म. म. पं. शिवदत्त शर्मा जी का मत है कि पाणिनि शलङ्क के पुत्र थे। इसका आधार पाणिनि के नामान्तर 'शालङ्कि' श्शब्द की व्युत्पत्ति है- 'शलङ्कोरपत्यं शालङ्किः'। कैयट, हरदत्त तथा गणरत्नमहोदधिकार वर्धमान भी शालङ्कि श्शब्द को शलङ्क श्शब्द से ही निष्पन्न मानते हैं। मीमांसक जी ने अपने 'संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास' के प्रथम भाग में शलङ्क को माना है, परन्तु प्रायः इसका कारण द ष्टिदोष है, क्योंकि 'महाभाष्य' की प्रस्तावना में शलङ्क श्शब्द का ही उल्लेख मिलता है।

अन्यत्र पिङ्गल को पाणिनि का अनुज बतलाया गया है।

(ग) **पाणिनि का निवासस्थानः** अष्टाधायी के 'उदक च विपाशः तथा 'वाहीकग्रामेभ्यश्च' सूत्रों के 'महाभाष्य' के प्रामाण्य पर ऐसा सिद्ध होता है कि पाणिनि वाहीक देश से विशेष परिचित थे। इस जाति का देश वर्तमान बलख है। ऐसा कहा जाता है कि 'वाहीक' लोक पंजाब के उस प्रदेश में रहते थे जिसे सिन्धु नदी तथा पंजाब (पंचनद) की अन्य पाँच नदियाँ सींचती थी। परन्तु यह क्षेत्र भारत के पुण्यक्षेत्र से बाहर था। घोड़ों तथा हींग के लिए इसकी प्रसिद्धि थी। अतः 'वाहीकग्राम' श्शब्दों में षष्ठीतत्पुरुष समास माना चाहिए।

'वाहीक' देश से विशेष परिचित होने के कारण पाणिनि के देश के विषय में यह सम्भावना है कि 'वाहीक' देश या तत्समीपस्थ कोई प्रदेश पाणिनि का जन्मस्थान रहा होगा।

यद्यपि पाणिनि का नाम 'शालातुरीय' अथवा 'सालातुरीय' भी होने के कारण यह प्रतीत होता है कि पाणिनि का देश शलातुर या सलातुर था। यह 'शलातुर' या 'सलातुर' अटक के समीपस्थ वर्तमान लाहौर ही है- ऐसा पुरातत्ववेत्ताओं का मत है। किन्तु पाणिनि ने 'तूदीशलातुरवर्मती.' सूत्र में शलातुर श्शब्द का पाठ किया है। जिससे यह सिद्ध होता है कि 'शालातुरीय' उसे ही कहा जा सकता है जिसका अभिजन, अर्थात् पूर्वजों का निवासस्थान, 'शलातुर' हो। अतः पाणिनि का जन्मस्थान 'शलातुर' को मानना उचित नहीं है।

(घ) **पाणिनि के आचार्यः** पाणिनि के आचार्य के विषय में परम्परागत मत तो यही है कि पाणिनि ने गोपर्वत पर तपस्या करके साक्षत् महेश्वर शिव से ही अक्षरसमाम्नाय का उपदेश प्राप्त किया था। इसी अक्षरसमाम्नाय को आधार बनाकर पाणिनि ने 'अष्टाधयायी' का निर्माण किया था। 'कथासरित्सागर' में उपवर्ष के अग्रज वर्ष उपाध्याय को पाणिनि का गुरु माना गया है। जयरथ के 'हरचरितचिन्तामणि' के अवलोकन से भी यही ज्ञात होता है। कि प्रारम्भ में वर्षोपाध्याय के शिष्य होने पर भी जब पाणिनि अपनी जड़ता के कारण उनसे कुछ सीख न सके तब उन्होंने अपनी जड़ता को दूर करने के लिए हिमालय पर्वत पर जाकर भगवान शंकर की तपस्या की और वहीं भगवान् शंकर ने उन्हें व्याकरणशास्त्र का उपदेश दिया। परन्तु इसमें भी पूर्वोक्त 'स्कन्दपुराण' के कथन - गोपवर्त पर पाणिनि ने शङ्कर की आराधना की थी- से कुछ भिन्नता अवश्य है। गोपवर्त तथ हिमालय की एकता में कोई प्रमाण नहीं मिल रहा है।

(ङ) **पाणिनि की शिष्यपरम्पराः** पाणिनि के शिष्यों में सर्वप्रथम कात्यायन वररुचि का नाम आता है। यह तथ्य 'संख्या वंश्येन' सूत्र के ऊपर लघुश्शब्देन्दुशेखरकार नागेश की व्याख्या से ध्वनित होता है- ऐसा मीमांसक जी भी मानते हैं। 'हरचरितचिन्तामणि' का मत कुछ भिन्न ही है वहाँ कहा गया है कि जब पाणिनि शंकर की कृपा से व्याकरणशास्त्र का पाण्डित्य पाकर लौटे तो उन्होंने वररुचि आदि अपने सतीर्थ्यों का उपहास करना शुरू कर दिया उस पर क्रुद्ध वररुचि का सात दिनों तक पाणिनि से शास्त्रार्थ चलता रहा और अन्त में आठवें दिन पाणिनि परास्तप्राय हो गए थे। वैसा देख कर भगवान् शङ्र ने हुंक की आकाशवाणी की और उसके बल से पाणिनि ने पुनः वररुचि के ऊपर विजय प्राप्त कर ली। तत्पश्चात् खिन्न होकर वररुचि हिमालय की गुफा में शङ्कर की आराधना के लिए चले गए और वहाँ शङ्की को प्रसन्न कर उनसे पुनः पाणिनि के लिए प्राप्त व्याकरण शास्त्र का अधिगम किया।

'महाभाष्य' में एक एदाहरण मिलता है- 'उपसेदिवान् कौत्सः पाणिनिम् 'काशिका' में भी अनूषिवान् कौत्सः पाणिनिम्' आदि उदाहरण उपलब्ध होते हैं। इन उदाहरणों से यह सिद्ध होता है कि पाणिनि के शिष्यों में कौत्स भी अन्यतम थे। भारतीय वाङ्मय में अनेक ग्रन्थों में उल्लिखित कौत्स से भेद या अभेद का निर्णय करना कुछ कठिन है। किन्तु 'निरुक्त' तथा 'रघुवंश' में उल्लेखित कौत्स को पाणिनिशिष्य कौत्स से भिन्न मानना ही उचित प्रतीत होता है।

यद्यपि 'महाभाष्य' 1.4.41 के उल्लेख से तथा 'काशिका' 6.2.104 के उदाहरण से पाणिनि के अनेक शिष्यों का निश्चय करना ही पड़ता है तथापि कौत्स से अतिरिक्त किसी शिष्य का नाम अब तक उपलब्ध नहीं हो सका है।

(च) **पाणिनि का कालः** पाणिनि के काल के विषय में चिरकाल से प्राच्य तथा पाश्चात्य विद्वानों में वैमत्य बना हुआ है। गैरोला महाशय ने कुछ प्रसिद्ध प्राच्य एवम् पाश्चात्य विद्वानों के मतों का संकलन निम्नलिखित रूप में किया है।

पं. सत्यव्रत सामाश्रमी	2400 ई. पूर्व
राजवाडे तथा वैद्य	900-800 ई. पूर्व
वेलवेलकर	700-900 ई. पूर्व
भाण्डारकर	700 ई. पूर्व
उपाध्याय	500 ई. पूर्व
मेकडॉनल	500 ई. पूर्व
मैक्समूलर	350 ई. पूर्व
कीथ	300 ई. पूर्व

पं. युधिष्ठिर मीमांसक जी ने अनेक अन्तरङ्ग बहिरङ्ग प्रमाणों के आधार पर यह निर्णय किया है कि पाणिनि का समय स्थुलतया विक्रम से 2100 वर्ष प्राचीन है।

पाणिनि का काल 700 ई. पूर्व से 600 ई. पू. के मध्य में अधिकांश विद्वान मानते हैं। डा. वासुदेवशरण अग्रवाल पाँचवीं शतशब्दी ई. पू. का मध्य भाग मानते हैं।

अष्टाध्यायी

पाणिनिप्रणीत व्याकरण शास्त्र के आठ अध्यायों में विभक्त होने के कारण इसका विशेष अभिधान 'अष्टाध्यायी' श्शब्द से होता है। अष्टाध्यायी के समान 'अष्टक' श्शब्द का प्रयोग भी पाणिनि व्याकरण के लिए उपलब्ध होता है। पाणिनीय व्याकरण शास्त्र का एक नाम 'श्शब्दानुशासन' भी है। किन्तु 'श्शब्दानुशासन' श्शब्द का अर्थ भी व्याकरण-सामान्य मानना ही युक्तियुक्त है।

'महाभाष्य' तथा चीनी चात्री इत्सिंङ्ग के यात्राविवरण में पाणिनि सूत्र को 'व त्तिसूत्र' कहा गया है। नागेश भट्ट का कहना है कि ऋषिप्रणीत होने तथा अनेक अर्थो की सूचक होने के कारण योग- 'अष्टाध्यायी' का एक-एक सार्थक अंश-तथा प्रत्येक वार्त्तिक के भी अथवा समस्त अष्टाध्यायी एवं वार्त्तिकों की समष्टि के भी 'सूत्र' कहलाने योग्य होने से पाणिनीय सूत्र तथा वार्त्तिकारीय वार्त्तिकापरपर्याय सूत्र में भिन्नता के प्रतिपादन के लिए ही भाष्यकार ने पाणिनि-वचन को 'व त्तिसूत्र' कहा है। यतः पाणिनिसूत्र पर व त्तियों का निर्माण हुआ है, वार्त्तिकात्मक सूत्र पर नहीं, अतः विशेषण की सार्थकता स्पष्ट है। वार्तिकात्मक सूत्र भाष्यविशिष्ट हैं जब कि पाणिनीयसूत्र व त्तिविशिष्ट हैं- यहीं तात्पर्य है। 'व त्तिसूत्र' श्शब्द की अन्यान्य व्याख्याएँ भी मीमांसक जी ने प्रस्तुत की हैं, परन्तु उनका औचित्य इस प्रसङ्ग में बहुत स्पष्ट नहीं प्रतीत होता है।

'अष्टाध्यायी' का स्वरूप

'अष्टाध्यायी' इस नाम से ही स्पष्ट है कि पाणिनीय व्याकरण आठ अध्यायों में विभक्त है। प्रत्येक अध्याय में चार-चार पाद हैं समस्त 'अष्टाध्यायी' की सूत्रसंख्या या पादगत सूत्रसंख्या में एकमत्य नहीं है, क्योंकि 'काशिका' आदि ग्रन्थों में कुछ ऐसे भी सूत्र मान लिए गए हैं जो अन्य वैयाकरणों की द ष्टि में वार्त्तिक या वार्त्तिकात्मक सूत्र हैं, पाणिनीय सूत्र नहीं। प्रत्यक्ष निदर्शन तो प्रथमाध्याय के प्रथम पाद की सूत्रसंख्या ही है जो 'अथ श्शब्दानुशासनम्' तथा प्रत्याहार सूत्रों में अन्यतर या उभय के पाणिनिसूत्रत्व एवम् तदभाव के वैमत्य के अनु सार परस्पर-भिन्न हो जाती है। इससे अतिरिक्त भी कुछ ऐसे सूत्र हैं जिनके 'व त्तिसूत्र' या 'भाष्यसूत्र' होने में सन्देह है। 'महाभाष्य' सभी सूत्रों (के वार्त्तिकों) पर तो है ही नहीं, अतः इसके आधार पर सूत्रसंख्या का निर्धारण भी कुछ कठिन कार्य है। काशिका के अनुसार अष्टाध्यायी के सूत्रों की संख्या 3983 है और सिद्धान्तकौमुदी के अनुसार 3976 है।

'अष्टाध्यायी' का महत्व

सभी प्राच्य तथा पाश्चात्य विद्वान् 'अष्टाध्यायी' के महत्व को एक-स्वर से स्वीकार करते हैं। सभी ग्रन्थों में पाणिनीय व्याकरण को सर्वाधिक उत्कृष्ट माना गया है। अत एव इसके महत्व के विषय में अधिक कहने की अपेक्षा नहीं है। निम्नलिखित तर्क ही संक्षेप में पर्याप्त होगाः

किसी भी शास्त्र के विलोप का कारण है जनप्रियता का अभाव। आक्रमण आदि से ग्रन्थों का विनाश हो सकता है, सम्प्रदाय का नहीं- इसका साक्ष्य इतिहास में उपलब्ध है। जनप्रियता के अभाव के दो कारण होते हैंः- अनुपयोगिता तथा अनावश्यक क्लिष्टता। द्वितीय कारण का तात्पर्य यह है कि यदि एक क्लिष्ट तथा अन्य सरल उपाय एक ही लक्ष्य पर पहुंचाने में समर्थ होते हैं जनमानस सरल उपाय को ही पसन्द करता है। अतः पाणिनीय व्याकरण से पूर्व तथा उत्तरकाल में विनिर्मित अनेकानेक व्याकरणशास्त्र का विनाश या विरल प्रचार ही चिरकाल से विकासमान पाणिनीय व्याकरणशास्त्र के महत्व का प्रख्यापन करता है।

दूसरी बात यह है कि शास्त्र का प्रयोजन लोक-व्युत्पादन है। अतः लोक-स्थिति का उल्लंघन कर कोई भी शास्त्र लोक में प्रतिष्ठित नहीं हो सकता। आचार्य पाणिनि की द ष्टि में यह बात अवश्य थी। तभी तो उन्होंने 'तदशिष्यं संज्ञाप्रमाणत्वात्', 'लुब्योगा प्रत्याख्यानात्', 'योगप्रमाणे च तदभावे दर्शनं स्यात्', प्रघनप्रत्ययार्थवचनमर्थस्यान्यप्रमाणत्वात्' तथा 'कालोपसर्जने च तुल्यम्' आदि सूत्र लिखे हैं। इस द ष्टि से भी पाणिनीय शास्त्र की प्रतिष्ठा अक्षुण्ण बनी रही है।

पाणिनीय परम्परा के तीन युग

1. प्रथम युग - मुनित्रय
2. आचार्य पाणिनि

आचार्य पाणिनि के विषय में पहले ही बताया जा चुका है। पाणिनि की रचनाओं में अष्टाध्यायी या पाणिनीयाष्टक का प्रमुख स्थान है। यह ग्रन्थ संस्कृत भाषा का अनुपम रत्न है। भाषा में इसके जोड़ का व्याकरण नहीं बना। पाणिनि ने इस लघुकाय ग्रन्थ में संस्कृत जैसी विस्त त भाषा का पूर्णतया विश्लेषण करने का प्रयास किया है। उनकी विवेचना वैज्ञानिक है, शैली संक्षिप्त, सांकेतिक तथा संयत है। इस ग्रन्थ का क्रम भी अनूठा है। प्रथम अध्याय में विशेष रूप से संज्ञा और परिभाषा प्रकरण हैं। द्वितीय अध्याय में समास तथा विभक्तिप्रकरण, त तीय में क दन्तप्रकरण, चतुर्थ तथा प चम में स्त्रीप्रत्यय और तद्धितप्रकरण है। षष्ठ, सप्तम और अष्टम अध्यायों में सन्धि, आदेश तथा स्वरप्रक्रिया आदि के विविध प्रकरण हैं। अष्टाध्यायी के अतिरिक्त धातुपाठ तथा गणपाठ भी आचार्य पाणिनि की क तियाँ हैं।

उणादिसूत्र को भी पाणिनिक त बतलाया जाता है। वस्तुतः यह पाणिनि की रचना नहीं है। हाँ, पाणिनि ने उणादयो बहुलम् 3/3/1' सूत्र द्वारा उणादि सूत्रों की प्रामाणिकता अवश्य स्वीकार की है। इसी प्रकार पाणिनीय शिक्षा तथा लिङ्गानुशासन नामक लघुग्रन्थों को भी पाणिनि की रचना मानना विवादास्पद ही है। इनके अतिरिक्त यह भी कहा जाता है कि पाणिनि ने पाताल-विजय या जाम्बवती-विजय नामक एक महाकाव्य की रचना की थी, जो आज उपलब्ध नहीं है।

कात्यायन (500 ई० पू० से 300 ई० पू० के मध्य)

कात्यायन मुनि व्याकरण शास्त्र में वार्त्तिककार के नाम से प्रसिद्ध हैं। उन्हें वररुचि नाम से भी जाना जाता है। उनके समय का निर्धारण भी विद्वानों की चर्चा का विषय रहा है। प्रायः आधुनिक विद्वानों ने उनका समय 500 ई० पू० तथा 300 ई० पू० के मध्य माना है। पं० युधिष्ठिर मीमांसक का मत है कि उनका समय विक्रम पूर्व 2700 वर्ष है। एक वार्तिक की व्याख्या करते हुए महाभाष्यकार कहते हैं। 'प्रियतद्धिताः दाक्षिणात्याः'। इस कथन से यह अनुमान किया जाता है कि वार्तिककार कात्यायन दाक्षिणात्य थे।

कात्यायन का भाषाविषयक ज्ञान अगाध था। उनकी द ष्टि एक समीक्षक की द ष्टि थी। उन्होंने पाणिनि के सूत्रों की सूक्ष्म द ष्टि से आलोचना करके उनकी कमियों को दूर करने का प्रयास किया है तथा अष्टाध्यायी के लगभग 1500 सूत्रों पर लगभग 4000 वार्त्तिक लिखे हैं।

पाणिनि-व्याकरण के विकास और पारिष्कार में कात्यायन का महत्त्वपूर्ण योगदान है। उन्होंने पाणिनीय व्याकरण को अधिक तथ्यानुकूल एवं समयानुकूल बनाने का प्रयास किया है तथा इसकी अपूर्णता को दूर किया है। वार्त्तिककार के वचनों में भाषा के विकास की झलक देखी जा सकती है। उनकी आलोचना में अनुसंधान की प्रव त्ति द ष्टिगोचर होती है। वार्त्तिककार की इस प्रव त्ति में किसी दुर्भावना की खोज करना उचित नहीं प्रतीत होता। डा० वेलवल्कर का यह मन्तव्य नितान्त सत्य है कि 'कात्यायन के वार्त्तिकों का लक्ष्य पाणिनि के सूत्रों में संशोधन और परिवर्धन है।'

पत जलि (२०० ई० पू० तथा प्रथम ई० शती के मध्य)

पत जलि ने महाभाष्य नामक ग्रन्थ की रचना की है अतः वे महाभाष्यकार के नाम से प्रसिद्ध हैं। उनका समय भी विद्वानों के विवाद का विषय रहा है। कुछ विद्वानों के अनुसार उनका समय ईसा की प्रथम शती है। डा० वेलवल्कर ने उनका समय 150 ई० पू० माना है। इस मत का आधार यह है-महाभाष्यकार ने एक सूत्र की व्याख्या में लिखा है 'इह पुष्यमित्रं याजयामः' (यहाँ पुष्यमित्र को यज्ञ कराते हैं)। इस प्रयोग से विदित होता है कि पत जलि ने पुष्यमित्र को यज्ञ कराया था। फलतः वे पुष्यमित्र के समकालीन थे। इतिहासकारों ने पुष्यमित्र का समय 150 ई० पू० माना है। अतः पत जलि का समय भी यही है। इसके अतिरिक्त अन्य प्रमाणों से भी इस मत की पुष्टि की गई है। किन्तु युधिष्ठिर मीमांसक इस मत को स्वीकार नहीं करते। उनका विचार है कि भारतीय गणना के अनुसार पुष्यमित्र का समय 1200 ई० पू० के लगभग होना चाहिए। इसलिए पत जलि का समय भी वही होगा।

पत जलि को शेषनाग का अवतार माना जाता है। अतः कहीं-कहीं उनके लिए फणिभ त्, अहिपति इत्यादि श्शब्दों का भी प्रयोग किया गया है। उन्होंने अपने मत प्रकट करते हुए 'गोनर्दीय' श्शब्द का प्रयोग किया है-'गोनर्दीयस्त्वाह'। इससे विदित होता है वे गोनर्द प्रदेश के रहने वाले थे। व्याख्याकारों का अनुमान है कि जहाँ गाय-बैल अधिक ह ष्ट-पुष्ट होते हैं अतः विशेष रूप से नाद करते हैं (आधुनिक प जाब और हरयाणा आदि) सम्भवतः यही प्रदेश पत जलि का निवास स्थान रहा होगा।

पत जलि ने पाणिनि के मुख्य-मुख्य सूत्रों तथा कात्यायन के वार्त्तिकों की सोदाहरण व्याख्या की है। पाणिनि के प्रति उनकी अत्यधिक श्रद्धा प्रकट होती है। उन्होंने पाणिनि के कतिपय सूत्रों का प्रत्याख्यान भी किया है, किन्तु वहाँ लाघव एवं

तथ्य-निरूपण की द ष्टि ही रही है। पत जलि के मतानुसार जिस भगवान् पाणिनि का एक वर्ण भी निरर्थक नहीं हो सकता, भला उसके दोष-दर्शन का दुस्साहस कैसे किया जा सकता है? वार्त्तिककार के वार्त्तिकों की भी महाभाष्यकार ने व्याख्या की है उनकी उपयोगिता पर विचार भी किया है। साथ ही सूत्रकार एवं वार्त्तिककार के वचनों की समीक्षा करते हुए अपना निर्णय भी दिया है। पाणिनीय व्याकरण में महाभाष्य के मन्तव्य सबसे अधिक प्रामाणिक माने जाते हैं। 'यथोत्तरं मुनीनां प्रामाण्यम्' इस न्याय के अनुसार पाणिनि के वचनों से भी अधिक पत जलि के वचन प्रामाणिक हैं। वस्तुतः पाणिनीय व्याकरण के परिनिष्ठित रूप का निर्धारण करना पत जलि का ही कार्य है।

द्वितीय युग

महाभाष्य के साथ-साथ पाणिनि व्याकरण का प्रथम युग समाप्त हो गया। ईसा की सातवीं शतशब्दी में फिर अष्टाध्यायी तथा महाभाष्य पर कुछ सरल टीका-ग्रंथ लिखे जाने लगे। यहीं से द्वितीय युग का प्रारम्भ हुआ समझना चाहिए। इस युग में पाणिनि व्याकरण पर अनेक टीका-ग्रन्थ लिखे गये। भर्त हरि ने महाभाष्य पर टीका लिखी। 'काशिका' पर जिनेन्द्रबुद्धि ने 'न्यास' नामक ग्रन्थ लिखा तथा हरदत्त ने 'पदम जरी' नामक व्याख्या की। इस युग में ही पाणिनि व्याकरण का दार्शनिक विवेचन का प्रारम्भ हो गया। भर्त हरि (650 ई०) ने 'वाक्यपदीय' नाम का ग्रन्थ लिखकर इस विवेचना का श्रीगणेश किया। इस युग की अन्तिम रचना कैयट की प्रदीप नामक टीका कही जा सकती है जो महाभाष्य पर लिखी गई सुन्दर टीका है।

भर्त हरि-(सप्तम शताब्दी)

भर्त हरि का संस्क त-व्याकरण में अत्यन्त उच्च स्थान है। व्याकरण के मुनित्रय के पश्चात् उनकी ओर ही द ष्टि जाती है। फिर भी उनके विषय में हमारी जानकारी बहुत ही कम है।

भर्त हरि का समय भी अनिश्चित सा ही है। अनेक विद्वान् इत्सिंग नामक चीनी-यात्री के लेख का अनुसरण करके भर्त हरि का समय सप्तमी शती ई० का उत्तरार्ध मानते हैं। भारतीय परम्परा के अनुसार भर्त हरि महाराज विक्रमादित्य के भाई थे। युधिष्ठिर मीमांसक ने इत्सिंग के लेख की भूल की ओर संकेत करते हुए युक्ति एवं प्रमाणों के आधार पर यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि भर्त हरि का समय ईसा से कई शतशब्दी पूर्व होना चाहिए।

भर्त हरि के जीवनव त्त के विषय में कुछ किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। कुछ प्रामाणिक विवरण भी मिलता है। वाक्यपदीय पर लिखी हुई पुण्यराज की टीका से विदित होता है कि भर्त हरि के गुरू वसुराज थे। 'प्रणीतो गुरुणा स्माकमयमागम-संग्रहः' इस श्लोक की अवतरणिका में पुण्यराज ने लिखा है-'तत्र भगवता वसुरातगुरुणा ममायमागमः संज्ञाय वात्सल्यात् प्रणीतः।' इत्सिंग के विवरण के अनुसार वाक्यपदीय का रचयिता भर्त हरि बौद्ध था उसने सात बार प्रव्रज्या ग्रहण की थी। किन्तु वाक्यपदीय के अनुशीलन से यह स्पष्ट है कि भर्त हरि वैदिक मत के अनुयायी थे। एक स्थान पर उन्होंने लिखा है-वेदशास्त्राविरोधी च तर्कश्चक्षुरपश्यताम्' इसी प्रकार अन्य सन्दर्भों में भी उनकी वेद के प्रति आस्था दिखलायी देती है।

भर्त हरि की रचनाएँ

संस्क त वाङ्मय में भर्त हरि के नाम से अनेक ग्रन्थ मिलते हैं जैसे महाभीष्यदीपिका, वाक्यपदीय, नीतिशतक आदि शतकत्रय, भट्टिकाव्य और भागव त्ति नामक अष्टाध्यायी की एक प्राचीन व त्ति। इनके अतिरिक्त 'वेदान्तसूत्रव त्ति' आदि कतिपय अन्य ग्रन्थों का भी भर्त हरि से सम्बन्ध जोड़ा जाता है।

युधिष्ठिर मीमांसक ने यह सिद्ध किया है कि वाक्यपदीय तथा महाभाष्यदीपिका के रचयिता एक ही भर्त हरि हैं, भट्टिकाव्य तथा भागव त्ति के कर्त्ता उससे भिन्न हैं, कि च भट्टिकाव्य एवं भागव त्ति के रचयिता भी परस्पर भिन्न ही हैं। इस प्रकार तीन भर्त हरि हुए हैं, यह परिणाम निकलता है। जहाँ तक शतकत्रय का प्रश्न है, उसके विषय में यह निश्चित नहीं किया जा सका है कि यह किस भर्त हरि की रचना है।

महाभाष्यदीपिका

महाभाष्य पर लिखी गई एक विस्त त व्याख्या थी। इत्सिंग के अनुसार इसका परिमाण 25000 श्लोक के बराबर था। यह व्याख्या अभी तक पूर्ण रूप से उपलब्ध नहीं हो सकी है। इसके उद्धरण अनेक ग्रन्थों में मिलते हैं। भर्त हरि ने वाक्यपदीय ब्रह्मकाण्ड की स्वोपज्ञ टीका में भी इसकी ओर संकेत किया है-'संहितसूत्र-भाष्यविवरणे बहुधा विचारितम्'। आधुनिक युग में डा० कीलहार्न

ने महाभाष्यदीपिका का प्रथमतः परिचय दिया है। जर्मनी में बर्लिन के पुस्तकालय में महाभाष्यदीपिका के एक अंश की हस्तलिपि विद्यमान है। इसकी फोटो कापी लाहौर तथा मद्रास के पुस्तकालयों में भी है। पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु ने इसका सम्पादन प्रारम्भ किया था।

वाक्यपदीय

यह व्याकरण दर्शन का ग्रन्थ है इसके तीन काण्ड हैं-ब्रह्मकाण्ड, वाक्यकाण्ड, प्रकीर्णकाण्ड। इसमें समस्त विश्व को शब्दब्रह्म का विवर्त्त माना गया है, स्फोट रूप शब्द का विशद वर्णन किया गया है तथा व्याकरण के विविध विषयों का प्रक्रिया एवं अर्थ की द ष्टि से विवेचन किया गया है {वाक्यपदीय के ब्रह्मकाण्ड के कई संस्करण प्रकाशित हुए हैं शेष वाक्यपदीय भी प्रकाशित हुआ है अभी कुछ समय पूर्व वाक्यपदीय का टिप्पणी सहित अंग्रेजी अनुवाद भी प्रकाशित हुआ है।}

इस प्रकार भर्त हरि केवल महाभाष्य के व्याख्याकार ही नहीं है। उनका विशिष्ट महत्व तो इसमें है कि उन्होंने व्याकरण-दर्शन के स्वरूप को व्यवस्थित किया है। महाभाष्य में जो व्याकरण-दर्शन के मन्तव्य यत्र-तत्र कहीं संकेत रूप में तथा कहीं स्पष्ट रूप मे विद्यमान थे, उनका क्रमबद्ध वैज्ञानिक विश्लेषण प्रथमतः भर्त हरि ने ही किया है। अपने इस मौलिक कार्य के कारण भर्त हरि का सदा आदरपूर्वक स्मरण किया जाता रहेगा।

त तीय युग

त तीय युग में पाणिनि के अध्ययन की द ष्टि बदल गई। विषय-विभाग के अनुसार अष्टाध्यायी के सूत्रों की व्यवस्था की जाने लगी। वास्तव में इस युग में शब्द-सिद्धि की प्रक्रिया पर अधिक बल दिया जाने लगा और सूत्रों के विवेचन पर कम। इस दिशा में सर्वप्रथम प्रयास विमल सरस्वती (1350 ई०) का था जिन्होंने 'रूपमाला' लिखी। इसी द ष्टि से रामचन्द्र (15 वीं शती) ने प्रक्रिया-कौमुदी लिखी। प्रक्रिया-युग में सबसे महत्वपूर्ण स्थान भट्टोजिदीक्षित का है। इस समय के व्याकरण के दार्शनिक विवेचन सम्बन्धी ग्रन्थों में 'वैयाकरण-भूषण' उल्लेखनीय है जिसे भट्टोजिदीक्षित के भतीजे कौण्डभट्ट ने लिखा था।

भट्टोजिदीक्षित-(16 वीं शताब्दी ई० के लगभग)

भट्टोजिदीक्षित महाराष्ट्रीय ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम लक्ष्मीधर था। वैयाकरण-भूषण के लेखक कौण्डभट्ट इनके छोटे भाई रङ्गोजिभट्ट के पुत्र थे। प्रौढ़-मनोरमा की टीका 'शब्दरत्न' के लेखक हरिदीक्षित इनके पौत्र थे।

पण्डितराज जगन्नाथ क त 'प्रौढ़मनोरमा-खण्डन' नामक गन्थ से विदित होता है कि भट्टोजिदीक्षित ने न सिंह के पुत्र शेषक ष्ण से व्याकरण शास्त्र का अध्ययन किया था। भट्टोजिदीक्षित ने 'शब्दकौस्तुभ' में शेषक ष्ण के लिए गुरू शब्द का प्रयोग भी किया है। एक अन्य स्थान पर इन्होंने अप्पथाय दीक्षित को भी नमस्कार किया है। (व्या० शा० का इतिहास प ० 447)।

वेलवल्कर ने भट्टोजिदीक्षित का समय 1600-1650 ई० माना है। कुछ विद्वान् इनका समय 1580 ई० (1637 वि सं०) के लगभग मानते हैं। पं० युधिष्ठिर मीमांसक ने कतिपय प्रमाणों के आधार पर यह निर्धारित किया है कि इनका जन्म-काल वि० सं० की सोलहवीं शतशब्दी का प्रथम दशक मानना चाहिए।

भट्टोजिदीक्षित की क तियाँ

भट्टोजिदीक्षित ने अनेक ग्रन्थ लिखे थे। इन्होंने अष्टाध्यायी पर '**शब्दकौस्तुभ**' नामक एक व त्ति लिखी थी। आज इस व त्ति के प्रारम्भ के ढाई अध्याय तथा चतुर्थ अध्याय ही उपलब्ध हैं। यह ग्रन्थ किसी समय अत्यन्त महत्वपूर्ण समझा जाता रहा होगा। इसलिए इस पर अनेक टीकाएँ भी लिखी गई थी। सम्भवतः पण्डितराज जगन्नाथ ने 'कौस्तुभ-खण्डन' नामक ग्रन्थ भी लिखा था।

सिद्धान्तकौमुदी या वैयाकरण सिद्धान्तकौमुदी

भट्टोजिदीक्षित की कीर्ति का प्रसार करने वाला मुख्य ग्रन्थ है। यह 'शब्द कौस्तुभ' के पश्चात् लिखा गया था। भट्टोजिदीक्षित ने स्वयं ही इस पर **प्रौढ़मनोरमा नाम** की टीका लिखी है। सिद्धान्त-कौमुदी को प्रक्रिया-पद्धति का सर्वोत्तम ग्रन्थ समझा जाता है। इससे पूर्व जो प्रक्रिया गन्थ लिखे गये थे उनमें अष्टाध्यायी के सभी सूत्रों का समावेश नहीं था। भट्टोजिदीक्षित ने सिद्धान्तकौमुदी में अष्टाध्यायी के सभी सूत्रों को विविध प्रकरणों में व्यवस्थित किया है, इसी के अन्तर्गत समस्त धातुओं के रूपों

का विवरण दे दिया है तथा लौकिक संस्क त के व्याकरण का विश्लेषण करके वैदिक-प्रक्रिया एवं स्वर-प्रक्रिया को अन्त में रख दिया है। भट्टोजिदीक्षित ने काशिका, न्यास एवं पदम जरी आदि सूत्रक्रमानुसारिणी व्याख्याओं तथा प्रक्रियाकौमुदी और उसकी टीकाओं के मतों की समीक्षा करते हुए प्रक्रिया-पद्धति के अनुसार पाणिनीय व्याकरण का सर्वाङ्गीण रूप प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। उन्होंने आवश्यकतानुसार परिभाषाओं, वार्त्तिकों तथा भाष्येष्टियों का भी उल्लेख किया है। उन्होंने मुनित्रय के मन्तव्यों का साम जस्य दिखाया है तथा महाभाष्य का आधार लेकर कुछ स्वकीय मत भी स्थापित किये हैं। साथ ही प्रसिद्ध कवियों द्वारा प्रयुक्त किन्हीं विवादास्पद प्रयोगों की साधुता पर भी विचार किया है। मध्ययुग में सिद्धान्तकौमुदी का इतना प्रचार एवं प्रसार हुआ कि पाणिनि व्याकरण की प्राचीन पद्धति एवं मुग्धबोध आदि व्याकरण पद्धतियाँ विलीन होती चली गई। कालान्तर में प्रक्रिया-पद्धति तथा सिद्धान्तकौमुदी के दोषों की ओर भी विद्वानों की द ष्टि गई किन्तु वे इसे न छोड़ सके।

इनके अतिरिक्त भट्टोजिदीक्षित का 'वेदभाष्यसार' नामक ग्रन्थ भी प्रकाशित हुआ है (भारतीय विद्याभवन, बम्बई)। यह ऋग्वेद सायणभाष्य का सार है। इसकी भूमिका में भट्टोजिदीक्षित की 34 क तियों का उल्लेख किया गया है। इनमें '**धातुपाठ-निर्णय**' नामक ग्रन्थ भी है। हस्तलिपियों में इनकी '**अमरटीका**' नामक क ति उपलब्ध हुई है।

पाणिनीय व्याकरण में भट्टेजिदीक्षित का महत्त्वपूर्ण स्थान है। पाणिनि-व्याकरण पर उनका ऐसा अनूठा प्रभाव पड़ा है कि महाभाष्य का महत्त्व भी भुला दिया गया है। यह समझा जाने लगा है कि सिद्धान्तकौमुदी महाभाष्य का द्वार ही नहीं है अपितु महाभाष्य का संक्षिप्त किन्तु विशद सार है। इसी हेतु यह उक्ति प्रचलित है:-

कौमुदी यदि कण्ठस्था व था भाष्ये परिश्रमः।
कौमुदी यद्यकण्ठस्था व था भाष्ये परिश्रमः।।

प्रक्रिया के युग को शास्त्रार्थ के क्षेत्र में प्रविष्ट कराने वालों में नागेश भट्ट का नाम अग्रगण्य है। इनकी प्रतिभा अनूठी थी। इनका विविध शास्त्रों पर समान अधिकार था। उन्होंने व्याकरण के क्षेत्र में नव्य-न्याय की शैली का प्रवेश किया तथा अनेक मौलिक एवं व्याख्या-ग्रन्थों की रचना की।

नागेश भट्ट-(17 वीं तथा 18 वीं शती ई०)

नागेश भट्ट या नागोजि भट्ट के जीवन-व त्त के विषय में बहुत कम ज्ञात हो सका है। जनश्र ति के अनुसार वे महाराष्ट्र के एक ऋग्वेदी ब्राह्मण थे। नागेश भट्ट का समय 17 वीं शतशब्दी ई० के अन्त तथा 18 वीं शतशब्दी ई० के आरम्भ में है। (विशेष द्रष्टव्य सं० व्या० का इतिहास)।

नागेश भट्ट की व्याकरण-सम्बन्धी रचनाएँ हैं-महाभाष्यप्रदीपोद्योत, लघु श्शब्देन्दुशेखर, ब हच्छब्देन्दुशेखर, परिभाषेन्दुशेखर, लघुम जूषा, परमलघुम जूषा और स्फोटवाद।

सिद्धान्तकौमुदी पर अन्य भी अनेक टीकायें लिखी गई। उनमें परिव्राजकाचार्य ज्ञानेन्द्र सरस्वतीक त 'तत्त्वबोधिनी' विशेष महत्त्वपूर्ण है। किन्तु छात्रों की द ष्टि से 'बालमनोरमा' नामक टीका अधिक उपयोगी है।

वरदराज-लघुसिद्धान्त कौमुदी

पाणिनि-व्याकरण में बालकों का प्रवेश कराने के लिए भट्टोजि के शिष्य वरदाजाचार्य ने लघुकौमुदी तथा मध्यकौमुदी का निर्माण किया है। लघुकौमुदी मे व्याकरण-प्रक्रिया का सभी अपेक्षणीय विवरण वरदराज ने दिया है, यह सिद्धान्तकौमुदी का संक्षिप्त संस्करण होते हुए भी एक विलक्षण क ति है।

यहाँ पर लघुकौमुदी का ही अधिकांश भाग दिया जा रहा है। जहाँ सिद्धान्तकौमुदी में पाणिनि के लगभग सभी सूत्रों को लिया गया है, वहाँ लघुकौमुदी में केवल उन्हीं सूत्रों को लिया गया है जो व्यावहारिक ज्ञान के लिए उपयोगी हैं। वैदिकी प्रक्रिया और स्वर प्रक्रिया को सर्वथा छोड़ दिया गया है।

पाणिनि व्याकरण के अध्ययनार्थ ज्ञातव्य बातें

डा० श्रीनिवास शास्त्री ने पाणिनि व्याकरण के अध्ययनार्थ निम्नलिखित बातों को महत्त्वपूर्ण माना है।

1. **प्रत्याहार**-जब आदि के अक्षर का अन्त के इत्संज्ञक के साथ ग्रहण किया जाता है उसके द्वारा आदि तथा मध्य के समस्त अक्षरों का बोध होता है तो उसे प्रत्याहार कहते हैं। ये प्रत्याहार विशेषकर वर्णमाला के वर्णो का बोध कराने के लिए